मध्यकालीन संस्कृति और भक्ति आन्दोलन

(डॉ. सरिता)

भारतीय इतिहास में मध्यकाल विविध संस्कृतियों का उत्स है। विश्वभर की जितनी भी पुरातन संस्कृतियाँ एवं सभ्यताएँ हैं, उनमें भारतीय संस्कृति का भी उल्लेख है। मूल रूप से भारत में वैदिक संस्कृति का ऐतिहासिक परिदृश्य रहा है। भारतीय साहित्येतिहास का आकलन करने के बाद पता चलता है कि आदिकाल में सिद्ध, नाथ, और जैन समुदायों ने अपने विचार और दर्शन के माध्यम से मानव जीवन के मूल को समझने का प्रयास किया। उनके द्वारा लिखा गया साहित्य यद्यपि उतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाया है, जितनी मात्रा में मौखिक रूप में उसका प्रचलन आज भी उनके अनुयायी कर रहे हैं। मध्यकाल का ऐतिहासिक महत्व कई संदर्भों में दिखाई देता है। व्यापक स्तर पर यह जनजागरण का काल रहा है। इस काल में जो साहित्य रचा गया वह जनभाषा का साहित्य है, जो एक साथ भारत के कई वर्गों, समूहों और समुदायों का नेतृत्व करता है। साहित्यकारों के अनुसार यह सांस्कृतिक संक्रमण का काल भी रहा है, इसके ऐतिहासिक कारण भी हैं। इस समय विदेशी आक्रांताओं का भारत पर आक्रमण करना न केवल यहाँ की संस्कृति पर आघात था, बल्कि इसके माध्यम से आयातित संस्कृति भी यहाँ बलपूर्वक प्रचारित की गयी। अरबी, फारसी, तुर्की साहित्य का हिन्दी भाषा में प्रचलन जो आज भी दिखाई देता है, उसका कारण यही है। एक तरह से मध्यकाल में विविध संस्कृतियों का समागम दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति की जो सबसे बड़ी विशेषता 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की रही है, उसका अक्षरशः अनुपालन इस काल खण्ड में किया गया है। सन्त काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, कृष्ण काव्यधारा और रामकाव्यधारा आदि के माध्यम से मानवीय संस्कृति के श्रेष्ठ पक्षों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। समता, बन्धुता, सामाजिक समन्वय, भक्ति के माध्यम से अवगुणों का निराकरण, जीवन दर्शन का नवीन बोध और जनभाषा की संस्कृति आदि का प्रचलन अनायास एक आन्दोलन के रूप में परिवर्तित होता गया। भक्ति आन्दोलन ने उच्च और निम्न वर्ग की भिन्नता को समाज से मिटाने का प्रयास किया, जिसका प्रतिफलन भारतीय समाज में यह हुआ कि आज भी परिवारों में इन्हे एक आदर्श के रूप में माना जाता है।

महादेवी वर्मा का यह कथन भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य में आज भी प्रासंगिक है। विविध भाषा और संस्कृति से समृद्ध हमारा देश आधुनिक, मध्य और आधुनिक काल में अनेक दार्शनिक और भक्ति संप्रदायों से होकर गुजरा है, इसलिए यह तो कहा नहीं जा सकता कि यहाँ प्राचीन संस्कृति का इतिहास नहीं है। यहाँ की संस्कृति का उत्स वैदिक धर्म की प्रधानता से माना जाता है। इसमें मूलतः ज्ञान काण्ड, कर्म काण्ड और उपासना पर बल दिया जाता है। मनुष्य को शिक्षा देने के ये तत्कालीन माध्यम थे और इनका संबंध आश्रम व्यवस्था के साथ भी देखने को मिलता था। भारत की वैदिक संस्कृति एक सनातन परम्परा की संस्कृति रही है और इसकी एक प्रणाली है। मानवता, परोपकार, अहिंसा, धर्मपरायणता, कर्मप्रधानता, सन्मार्ग आदि सांस्कृतिक गुण जो आज भी भारतीय परिवेश में देखे जाते हैं, इन सभी की व्युत्पत्ति वैदिक युग से ही मानी जाती है। सभी प्राणियों में सद्भावना का जयघोष आज भी किसी सामाजिक और धार्मिक उत्सव के पूर्ण होने के बाद आज गूंजता हुआ सुनाई देता है। संस्कृति के ये गुण मध्यकाल में और अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुए।

मध्यकाल के आरम्भ में जैन और बौद्ध संस्कृति का प्रभाव मुख्य रूप से दिखाई देता है। परन्तु, इस समय उनका प्रभाव निरन्तर कम होता जा रहा था। गुरू नानक ने बौद्धों के और शैवों के बीच समन्वय कराने का भरसक प्रयास किया। अतः भक्तिकाल में समन्वय केवल भक्ति के पंथों के बीच ही दिखाई नहीं देता है, अपितु उसे हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। कवि चैतन्य ने भारतीय समाज में अपने दर्शन के माध्यम अपने शिष्यों में नया प्रकाश पैदा किया। हरिदास के मुस्लिम धर्म अपनाने के बावजूद भी चैतन्य ने उन्हें अपना शिष्य बनाकर धार्मिक सौहार्द का परिचय दिया। इस काल में वल्लभाचार्य का उदय हुआ जिन्होंने कर्म, ज्ञान और भक्ति को मोक्ष का द्वार माना। उनका जीवन दर्शन शंकराचार्य, रामानुजचार्य, मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य के समान ही भक्ति पर सर्वाधिक बल देता है। उनके काव्य में 'पोषणम् तदानुग्रह' की भक्ति का अनुगमन है, जिससे वे जीवन का पोषण ब्रह्म के अनुग्रह का फल मानते हैं। तुलसीदास का रचनात्मक व्यक्तित्व मध्यकाल की महत्वपूर्ण घटना है। वे इस काल के भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता माने जाते है। इसी के साथ–साथ समाज सुधारक और समाज के निर्माता के तौर पर उनकी गिनती होती है। वे शील, शक्ति और सौन्दर्य आदि गुणों से युक्त राम के व्यक्तित्व को भक्ति के अवलम्बन के रूप में चुनते हैं। वे धर्मपरायण और भारतीय समाज के आदर्श हैं। सहृदयता, करूणा, उदारता और मैत्री भाव उनके व्यक्तित्व के गुण हैं। एक प्रकार से तुलसीदास इस मध्ययुगीन समाज में इन गुणों की आवश्यकता पर बल देते हैं। भारत का सांस्कृतिक विकास मध्यकाल में ही समृद्ध

हुआ है। तुलसीदास ने एक साथ राज्य और प्रजा के परिवेश को चरित्रार्थ किया। उन्होंने जिस सांस्कृतिक चेतना का विकास उपरोक्त युग में विकसित किया उसकी दो दिशाएँ हैं– एक तो राम के माध्यम से 'शान्ति' की स्थापना का प्रयास करते हैं, दूसरे राम भक्तों में निषादराज, शबरी, विभीषण आदि के माध्यम से प्रजा के साथ सहजता का संदेश करते हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रख्यात आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काल को प्रवृतियों के आधार पर विश्लेषित किया है, इसका कारण यही था कि इस समय अनेक जातियाँ, वर्ग और समुदाय अस्तित्व में थे। जिनका उल्लेख उपरोक्त कथन में डॉ. देवराज ने किया है। अनेक संस्कृतियों के आने के बाद भी भारत की संस्कृति शाश्वत् और गतिशील है। इसके लिए स्थिर और जड़ रूप का प्रश्न ही नहीं उठता। मध्यकालीन संत कबीर जिस भक्ति के माध्यम से मानवता की रक्षा, समाज में परिवर्तन और समता की स्थापना करते हैं, वह यहाँ की सनातन सभ्यता की ही पुष्टि करते हैं। सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरू नानक ने 'जपुजी', 'असादीवार' के माध्यम से सांप्रदायिक भिन्नता को मिटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संत काव्य परम्परा में दादूद्याल, मलूकदास, रज्जब, रैदास और सुन्दरदास आदि का काव्य मात्र भक्ति का ही प्रचार नहीं करता है, अपितु समाज के उन मानकों की स्थापना करता है जो मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों को श्रेष्ठ बनाते हैं।

आलोच्य कथन भारत की 'अतिथि देवो भवः' की संस्कृति की पुष्टि करता है। भारत में अहिंसात्मक नहीं, रक्षात्मक संस्कृति के प्रति आग्रह है। मानव प्रेम और कर्तव्य परायणता ने संसार की सभी संस्कृतियों को यहाँ पनपने का अवसर दिया है और स्थानीय संस्कृति में उनका समाहार किया है। इस प्रवृति के प्रभाव से ही सूफी कवि कुतुबन, मंझन और जायसी आदि ने भारत की कथानक रूढ़ियों को आधार बनाकर मानव दर्शन की नयी व्याख्या प्रस्तुत की। यह अनायास नहीं था, इसके पीछे भक्ति आन्दोलन का प्रभाव था जिसने समाज में विरोधी संस्कृतियों के बीच सौहार्द को स्थापित किया। हिन्दी साहित्य की सूफी काव्यधारा ने हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के बीच समन्वय स्थापित किया।

भारत की संस्कृति का स्वरूप एक–सा कभी नहीं रहा। मध्यकाल में सूरदास का आगमन युगचेत्ता से कम नहीं था। वे समाज में वात्सल्य और प्रेम के माध्यम से जीवन में आसक्त भाव को समाविष्ट करते हैं। इस काल के प्रख्यात सामाजिक दार्शनिक और भक्त कवि वल्लभाचार्य से मिलने से पहले सूरदास विनय के पदों का गायन करते थे। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद उन्होंने श्रीकृष्ण का बाल वर्णन किया। यह सामान्य नहीं था, इसके माध्यम से वे गार्हस्थ्य जीवन में रागात्मकता का समावेश करते हैं। इस समय विविध संस्कृतियाँ अपनी जड़े जमा चुकी थी और सूरदास का काव्य सांस्कृतिक चेतना को पैदा करके जीवनोत्सव का आधार बनता हुआ दिखाई देता है तथा मानव जीवन में संयोग और संसक्ति का मार्ग खोलता है।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भक्ति आन्दोलन, विविध परिस्थितियों की ऊपज है, इसके साथ–साथ उत्तर भारत की राजनैतिक परिस्थितियों ने भी इसके प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस कालखण्ड में बौद्धों और जैनों का विरोध किसी धार्मिक क्रांति से कम नहीं था। भारतीय संस्कृति के विविध कारक हैं जिनका अनुगमन भक्ति आन्दोलन के रूप में उपस्थित रहा। शंकराचार्य का 'अद्वैतवाद', रामानुजाचार्य का 'विशिष्टाद्वैतवाद', मध्वाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद', निम्बार्क का 'द्वैताद्वैतवाद', स्वामी हरिदास का 'सखी सम्प्रदाय' रामानन्द का 'रामावत' और स्वामी हितहरिवंश का 'राधा बल्लभी' सम्प्रदाय, इन सभी का दर्शन, भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की अमूल्य निधि है। भक्ति आन्दोलन, आलोच्य काल में लोक धर्म का पालन करता है, और यह मानव जीवन में समाज हित की नीतियों का क्रियान्वयन करता है। मध्यकाल की संस्कृति एकरेखीय नहीं थी, कला, संगीत, साहित्य और धर्म का प्राधान्य होने के कारण यह बहुरेखीय थी। सभी क्षेत्रों में समृद्ध होने के कारण इस काल को हिन्दी साहित्य में स्वर्ण काल की संज्ञा दी जाती है। अतः मध्यकाल भारतीय समाज का सांस्कृतिक अवचेतन है, जिसमें विविध संस्कृतियों का मूर्त्त रूप है।